P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-8* (Part-1) April- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

धमार

सारांश

भारतीय संस्कृति जितनी प्राचीन है उतनी ही विशाल भी है। इसके विस्तार की बात करें तो उसमें कला साहित्य आचार विचार खानपान तथा रहन–सहन में विविधता पाई जाती है । कला में विविधता पर गौर करें तो पता चलता है कि यह हमारी संस्कृति अनेकों कलाओं को सहेजे हुए हैं । इतना ही नहीं इस में सबसे प्रमुख स्थान गायन, वादन तथा नृत्य की कलाओं का है। गायन कलाओं में शास्त्रीय तथा उप-शास्त्रीय का विभेद सर्वविदित है। शास्त्रीय गायन शैलियों की विशेषता उनमें कठिन नियमों का पालन करना है । यही कारण है कि शास्त्रीय पक्ष की गायन शैलियों के कलाकार तथा श्रोता वर्ग बहुत ही सीमित है। ध्रुपद, धमार, खयाल, तराना इत्यादि प्रमुख शास्त्रीय गायन शैलियों के रूप में प्रसिद्ध है । इसमें भी धमाल की बात करें तो यह कहना गलत नहीं होगा कि यह एक विशेष गायन शैली है । इसकी विशेषता का परिचय इस के वर्ण्य विषय से मिलता है यथा इसमें राधा कृष्ण के श्रंगारिक प्रसंग, होरी प्रसंग इत्यादि का वर्णन मिलता है ।

श्वेता खरे
शोध छात्रा,
संगीत विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
प्रयागराज

मुख्य शब्द : शास्त्रीय गायन शैली, धमार, विकास, फाग, होरी।

प्रस्तावना

हिन्दुस्तानी शास्त्रीय गायन शैलियो के अन्तर्गत ध्रुपद के साथ–साथ विकसित होनी वाली एक अन्य विधा ''धमार'' के नाम से प्रचलित हुई। धमार एक विशेष गायन शैली है या यूँ कहे कि जब होरी के गीतो को धमार ताल में निबद्ध करके गाया जाता है तो उसे धमार कहते है। इसमें राधा –कृष्ण के श्रृंगारिक प्रसंगों, विशेषकर होरी प्रसंगों से युक्त वर्णन प्राप्त होता है। होरी को तीन अंगों से गाया जाता हैं और उनमें से भी जो ध्रुपद अंग से गायी जाती है वो धमार कहलाती है। इसी बात को स्पष्ट करते हुये जो उल्लेख मिलता है उसके अनुसार, ''वास्तव में होली अथवा होरी लोक संगीत की भी एक गायन शैली है किन्तु धमार गायन शैली में जो होली गाई जाती है वह ध्रुपद के अंग से शास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत गाई जाती है।[1]

अर्थ एवं व्युपत्ति

धमार के **अर्थ** को लोक भारती बृहत प्रमाणिक हिन्दी शब्दकोश के अन्तर्गत स्पष्ट उल्लेख करते हुये लिखा गया है कि ''धमार'' अथवा ''धमाल'' शब्द का अर्थ फाग के गीत, एक प्रकार का ताल, उपद्रव उछल–कूद कलाबाजी और धमाचौकड़ी आदि है।

धमार के अर्थ के बाद इसकी **व्युत्पत्ति** की ओर दृष्टिपात करें तो यह उल्लेख मिलता है कि ''धमाल, धमार, धमारि'' इन तीनों रूपों का मूल एक ही है। धमार शब्द की व्युत्पत्ति ''धम'' धातु में ''आल'' प्रत्यय के संयोग से मानी जा सकती है। आचार्य बृहस्पति के अनुसार, ''संस्कृत धातु धम का अर्थ सुलगाना, भड़काना शब्द करना, जोर से फूँक मारना और बजाना है। इसी धातु से बने हुये विशेषण धम का अर्थ सुलगाने वाला भड़काने वाला शब्द करने वाला इत्यादि है इस शब्द की संस्कृत व्युपत्ति धम इव ऋच्छति (धम+कृ+अच) हो सकती है जिसका अर्थ होगा गान का यह प्रकार जो प्रेरित करता हुआ अथवा फड़कता हुआ चले।[2]

विकास

यदि धमार के विकास व उत्पत्ति का समय जानना चाहे तो इस बारें में कोई लिखित प्रमाण प्राप्त नहीं होता है लेकिन ध्रुवपद के साथ–साथ व ध्रुवपद की तरह धमार भी तत् समय प्रचलित गायन शैलियों में प्रमुख स्थान रखता है।

धमार के विकास का अध्ययन तीन क्षेत्रों में बाँट कर सरल रूप में किया जा सकता है।

1. मुगल दरबार में
2. मंदिरों में
3. लोक जीवन में

मुगल दरबार के अन्तर्गत अकबर से लेकर औरगंजेब के काल तक धमारों का खूब प्रचलन रहा था। जिसका प्रमुख कारण इसका उल्लास पूर्ण व रंगारंग प्रकृति होना था। दरबारो में ध्रुवपद के समान गंभीर प्रकृति का गायन होने के साथ साथ चंचल प्रकृति के गीत की भी आवश्यकता थी जिसकी कमी धमारों की रचना ने काफी हद तक पूरी की गई थी।

जहाँगीर ने लिखा है कि तानसेन अपनी रचनाओं मे अकबर का नाम डाल दिया करते थे। राग यमन में रचित धमार का उदाहरण इस प्रकार है–

होरी खेलेई बनैगी, रूसें अब न बनैगी।
मेरो कहो तू मानि, नवैली जब था रंग सनैगी।।
कैसे बेरि आई गई तू नाहीं मानत ऊँची करि ठोड़ी भौहें तनैगी।
सहि जलालदीन फगुआ दीजैं आयुतें आप मनैगी।।[3]

मुगल दरबारो के अतिरिक्त धमारो का प्रयोग व प्रचलन मंदिरों के विभिन्न संप्रदाओं द्वारा भी किया गया है। ईश्वर भक्ति व उपासना के लिए मंदिरों में वैष्णव संतों द्वारा रचित पद भी ''धमार'' कहलाते है जो धमार ताल में बृद्ध होते थे। इन धमारो कीं संगति के लिए पखावज का प्रयोग किया जाता है। और कई कीर्तनकार एक साथ स्वयं झांझ बजाकर ''धमार'' गाते है। मंदिर में गाये जाने वाले धमार का उदाहरण इस प्रकार है।

सदा बसन्त रहत वृन्दावन लता लता दुम डोलें
एक दिन फागुन में धमार गायें।''[4]

''धमार'' लोक जीवन से भी गहराई से जुड़ा रहा है। धमार एक प्राचीन गायन विद्या है, जो लोकसंगीत में सामूहिक गान था और जो टोलियों में प्रसन्नता के साथ गाई जाती था। होली खेलती हुई टोलियाँ धमार गाती थी। और उनकी संगति ढोल द्वारा होती थी। क्योंकि ढोल लोक वाद्य की श्रेणी में आने वाला प्रमुख वाद्य था इनका विषय होली से संबंधित होता था आज के समय में गौर करें तो पाते है कि होली खेलने व टोलियों के निकलने की परंपरा ब्रज, मथुरा वृन्दावन आदि स्थानों पर आज भी कम ही सही पर प्रचलन में दिखायी पड़ता है।

इस गायन शैली का गायन पंजाब प्रदेश में काफी प्राचीन समय से होने के प्रमाण मिलते है। एक विशिष्ट परम्परा के द्वारा प्रवाहित होते हुये ये शब्द इस बात को प्रामाणित करते है कि धमार शैली सिख धर्म के उदय काल में भी प्रचलित थी। सदारंग अदांरग जोकि भारतीय संगीत के महान वाग्येकार हुये है, एक विशिष्ट परम्परा द्वारा पंजाब प्रदेश से ही सम्बन्धित माने जाते है। अतः इनके द्वारा रचे गए धमार इस बात को प्रामाणित करते है कि प्राचीनकाल से यह शैली किसी न किसी रूप में यहॉ विद्यमान रही है। मूल रूप से इस गायन शैली को पंजाब की लोक गायन शैली भी माना जाता है।

विशेषतायें

धमार के विकास को जानने के बाद इसकी विशेषताओं की ओर दृष्टिपात करें तो यह सभी जानते है कि धमार को ध्रुपद अंग की गायन शैली स्वीकार किया गया है। यह शैली ध्रुवपद से काफी मिलती है इसीलिए ध्रुवपद गायक ही क्रमशः इसे गाते है परन्तु फिंर भी धमार की अपनी कुछ विशेषताएं है जो इसे ध्रुवपद से अलग करती है जैसे धमार की विषय वस्तु में राधा कृष्ण के साथ गोपिकाओं, सखागण का वर्णन, नृत्य, गान, ढोल, मजीरा, अबीर–गुलाल की बाहर रंग भरी पिचकारी आदि का वर्णन होता है। धमार में केवल श्रृंगार रस का ही वर्णन होता है ध्रुपद की प्रकृति गम्भीर होती है जबकि धमार का उदृदेश्य गम्भीर से हटकर रंगीन वातावरण पैदा करना है।

यद्यपि धमार ध्रुपद से कुछ भिन्नता अवश्य रखता है फिर भी धमार में ध्रुपद के ही समान मींड, गमक आदि का प्रयोग होता है। ध्रुपद के समान विभिन्न लयकारी अर्थात दुगुन, तिगुन, चौगुन, आड़ आदि की जाती है।[5]

धमार का स्वरूप तथा संगत वाद्य

धमार में आजकल दो खण्ड ही दिखायी देती है।

1. स्थायी
2. अंतरा

किन्तु किन्हीं धमारेां के स्थायी अंतरा संचारी आभोग इस प्रकार चार भाग होते है। धमार गायन शैली के साथ मुख्य रूप से धमार ताल का ही प्रयोग किया जाता है तथा संगत वाद्य के रूप में आज के समय में जो वाद्य प्रचार में दिखते है। उनमें पखावज (किन्तु प्रयोग में कम दिखाना) तबला, तानपुरा, प्रमुख है।

धमार के प्रकार ---

धमार दो प्रकार के बताये गये है –

प्रकाश

जिनका सम एक स्पष्ट स्थान पर होता हैं।

गुप्त

जिनका सम गुप्त होता था और आरंम्भ में प्रथम पंक्ति को तीन बार गाने के बाद अंतिम बार में समझ में आता था।[6]

प्रकाश ढंग के ही धमार प्रायः गाये जाते रहे है।

प्रमुख कलाकर --

इस शताब्दी के सर्वश्रेष्ठ धमार गायकों में रामपुर घराने में उस्ताद वजीर खां एवं अहमद अली खां तथा जयपुर घराने के बहराम खॉं एवं हैदर वख्य के नाम लिये जाते है। ख्याल गायकी के आगरा घराने के विलायत हुसैन खा तथा फैयाज खां का नाम धमार के मुख्य कलाकारों मे लिया जाता है धमार गायक के रूप में दरभंगा घराने के पं0 रामचतुर मल्लिक पं0 विदुर मल्लिक, पं0 सियाराम तिवारी का नाम बहुत आदर के साथ लिया जाता है।[7] यही नहीं आज के सभी प्रसिद्ध ध्रुवपद गायकों का नाम धमार गायको में लिया जाता है।

वर्तमान स्थिति

इस प्रकार उपरोक्त विशेषताओं को जानकार हमें धमार गायन शैली का सम्पूर्ण परिचय प्राप्त होता है। किन्तु वर्तमान समय में इस गायन शैली की स्थिति पर दृष्टिपात करें तो उत्तर भारत में धमार गायन शैली के प्रचार में ह्रास व कमी दिखायी देती है हिन्दुस्तानी शास्त्रीय गायन शैलियों के अन्तर्गत ध्रुवपद, ख्याल आदि गायन शैलियों के विकास व प्रचार के लिए जिस प्रकार समारोह, उत्सव, महोत्सव, सेमिनारें का आयोजन किया जाता है। वैसे समर्थन इस गायन शैली को प्राप्त होता नहीं दिखता है।

अध्ययन का उद्देश्य

शास्त्रीय पक्ष की गायन शैलियां भारतीय कला जगत में ही भारतीय संस्कृति की गुणवत्ता को परिलक्षित नहीं करती अपितु यह गायन शैली विदेशी भूमि पर भी बहुत पसंद की जाती हैं । इस लेख का उद्देश्य यह है कि शास्त्रीय गायन के अन्य रूपों के बीच धमार के विकास और लोकप्रियता के कारणों का अध्ययन किया जा सके ।

साहित्यावलोकन

प्रस्तुत लेख के लेखन के लिए उपलब्ध साहित्य का अवलोकन किया गया है। इसमें प्रमुख रूप से पुस्तकों तथा पत्रिकाओं की सहायता ली गई है।

संकल्पना तथा परिकल्पना

प्रस्तुत लेख के मूल में यही संकल्पना है कि धमार नामक शास्त्रीय गायन शैली से संबंधित समस्त पहलुओं को संक्षिप्त किंतु उपयोगी तरीके से एक स्थान पर एकत्रित किया जा सके ।

लेख की परिकल्पना यही है कि शास्त्रीय पक्ष की अनेकों गायन शैलियां है परंतु धमार में ऐसी कौन सी विशेषताएं हैं जिनके कारण यह शैली आज भी लोगों के आकर्षण का केंद्र बनी हुई है।

अनुसंधान रेखा चित्र

प्रस्तुत लेख के लेखन में सिद्धांत विधि का उपयोग किया गया है जिसका स्त्रोत अनेक विश्वसनीय स्तर की पुस्तकें, पत्रिकाएं तथा ऑनलाइन वेबसाइट्स है।

जांच परिणाम

उपर्युक्त लेख के विवरण से यह स्पष्ट होता है कि धमार गायन शैली भी उतनी ही प्राचीन है जितनी की ध्रुवपद। मुख्य रूप से इन की प्रस्तुति ध्रुवपद के कलाकारों के द्वारा ही विभिन्न मंचों पर की जाती है। संगीत शिक्षण संस्थानों में पाठ्यक्रमों के अंतर्गत भी इस शैली को जानने समझने का अवसर विद्यार्थियों को प्राप्त होता है जिससे इसका प्रचार–प्रसार निरंतर हो रहा है।

निष्कर्ष

शास्त्रीय गायन शैलियों के अंतर्गत ध्रुवपद धमार का नाम एक साथ लिया जाता है क्योंकि इनके विकास का समय लगभग एक ही माना गया है। किंतु जहां एक और ध्रुवपद को गंभीर शैली की तो वही धमार को चंचल शैली की संज्ञा प्राप्त है। उपर्युक्त लेख के निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि ध्रुवपद का आश्रय लेकर भले ही धमार का विकास हुआ हो फिर भी धमार अपनी विशेषताओं के कारण अलग स्थान बनाए हुए हैं।

सुझाव

इस गायन शैलों को विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में स्थान अवश्य दिया गया है। किन्तु केवल इस कदम मात्र से इसके भविष्य को सुरक्षित नहीं किया जा सकता हैं। इसे संरक्षण देने के लिए अन्य माध्यमों पर विचार किये जाने की आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. माथुर, डॉ निशि *अष्टछाप भक्ति कवि और पुष्टिभार्गीय सेवा में संगीत* , जयपुर : राज पब्लिशिंग हाउस, 2011
2. शर्मा ,अमल दास *संगीतायन* , दिल्ली : आर्य प्रकाशन मंडल 1984
3. मलिक, डॉ प्रेम कुमार *दरभंगा घराना एवं बदिशे* , गाजियाबाद : कश्यप पब्लिकेशन, 2016
4. गर्ग, लक्ष्मी नारायण *निबन्ध संगीत* , हाथरस : संगीत कार्यालय, 1989
5. देवधर, डी. आर. *संगीत कला विहार* , महाराष्ट्र : गंधर्व निकेतन ब्राह्मणपुरी मिराज , मार्च 1975

पाद टिप्पणी

1. *देवधर, डी. आर. संगीत कला विहार, पृ0 95*
2. *बृहस्पति, 'धमार गायकी एक रंगारंग परम्परा' – निबंध संगीत, प्र062*
3. *गर्ग, लक्ष्मी नारायण, निबन्ध संगीत एपृ 64*
4. *माथुर, डॉ निशि अष्टछाप भक्ति कवि और पुष्टिभार्गीय सेवा में संगीत, पृ0 20*
5. *शर्मा , अमल दास संगीतायन पृ0 168*
6. *मलिक, डॉ प्रेम कुमार दरभंगा घराना एवं बदिशे पृ0 60*
7. *मलिक, डॉ प्रेम कुमार दरभंगा घराना एवं बदिशें पृ0–61*